निर्वाही जीवन से सतत व्यावसायीकरण की ओर भारतीय हिमालयी क्षेत्र में कृषि भूमि परित्याग, पलायन और मानव–वन्यजीव संघर्ष का समाधान (पौड़ी गढ़वाल जिले का एक प्रतीक अध्ययन) .

सारांश (Abstract)

संवेदनशील पर्वतीय पारिस्थितिकी तंत्रों में पारंपरिक कृषि–पशुपालन प्रणाली तीव्र बाह्य–पलायन और सामाजिक–पारिस्थितिकीय परिवर्तनों के कारण चरमरा रही है। भारतीय हिमालयी क्षेत्र के अंतर्गत उत्तराखंड राज्य का पौड़ी गढ़वाल जिला ग्रामीण निर्जनता का केंद्र बन चुका है, जहाँ राज्य में सबसे अधिक "भूतहा गाँव" (Ghost Villages) दर्ज किए गए हैं। पलायन आयोग की रिपोर्टों, दूरसंवेदी आँकड़ों और क्षेत्रीय कृषि गतिशीलता के आधार पर, यह शोध पत्र कृषि भूमि परित्याग के मुख्य कारणों की पड़ताल करता है। अत्यधिक खंडित सीढ़ीदार खेत, श्रम शक्ति का ह्रास, जंगली सूअर और बंदरों द्वारा होने वाला गंभीर मानव–वन्यजीव संघर्ष, तथा कृषि लागत के सापेक्ष नकारात्मक आर्थिक लाभ लोगों को अपना पुरातन कार्य छोड़ कर अन्य क्षेत्रों में जाने के लिए मजबूर कर रहा है। प्रस्तुत अध्ययन लोगों को पारंपरिक रूप से निर्वाही कृषि के पुराने ढर्रे पर लौटने के बजाय, एक भविष्योन्मुखी व्यावसायिक मॉडल प्रस्तुत करता है। पौड़ी गढ़वाल के केस स्टडी के माध्यम से, यह अध्ययन स्थानीय मोटे अनाजों (मंडुआ, झंगोरा) के मूल्य संवर्धन, कृषक उत्पादक संगठनों, वन्यजीव–रोधी नकदी फसलों (सुगंधित व औषधीय पौधे) और सौर ऊर्जा चालित सामुदायिक बाड़बंदी से युक्त क्लस्टर आधारित बागवानी मॉडल का मूल्यांकन करता है।

कीवर्ड्स (Keywords): कृषि भूमि परित्याग; ग्रामीण पलायन; घोस्ट विलेज; पौड़ी गढ़वाल; मानव–वन्यजीव संघर्ष; मोटे अनाज (मिलेट्स); कृषक उत्पादक संगठन; पर्वतीय कृषि।

1. प्रस्तावना (Introduction)

कृषि हिमालयी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था, समाज, संस्कृति तथा ग्रामीण जीवन का एक महत्वपूर्ण आधार रही है। हिमालय एक अत्यंत विस्तृत एवं भौगोलिक दृष्टि से विविधतापूर्ण पर्वतीय क्षेत्र है, जहाँ ऊँचाई, ढाल, जलवायु, मृदा, जल संसाधन तथा जैव–विविधता में व्यापक स्थानिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। इन भौतिक परिस्थितियों ने यहाँ की कृषि प्रणालियों को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है। सीढ़ीदार कृषि, मिश्रित कृषि, पशुपालन, कृषि–वनीकरण, वर्षा–आधारित खेती तथा विभिन्न ऊँचाई क्षेत्रों के अनुरूप फसलों का चयन हिमालयी कृषि की प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। इस प्रकार हिमालय में कृषि केवल **खाद्यान्न** उत्पादन की गतिविधि न होकर स्थानीय पर्यावरण के साथ मानव समाज के दीर्घकालीन अनुकूलन का परिणाम है। परंपरागत रूप से हिमालयी समुदायों की आजीविका कृषि, पशुपालन तथा वन संसाधनों पर आधारित रही है। कृषि एवं पशुपालन एक–दूसरे के पूरक रहे हैं। पशुओं से प्राप्त गोबर का उपयोग जैविक खाद के रूप में किया जाता था, जबकि वन क्षेत्रों से चारा, ईंधन, लकड़ी, औषधीय पौधे तथा अन्य वनोपज प्राप्त होती थीं। इस प्रकार कृषि, वन और पशुधन के बीच एक प्रकार की स्थानीय संसाधन–आधारित परस्पर निर्भरता विकसित हुई थी। स्थानीय समुदायों ने अपने अनुभव एवं पारंपरिक ज्ञान के आधार पर विभिन्न ऊँचाई क्षेत्रों के अनुकूल फसल प्रणालियाँ विकसित की थीं।हिमालयी क्षेत्र में परंपरागत रूप से गेहूँ, जौ, मक्का, धान, मंडुवा, झंगोरा, कुट्टू, दालें तथा विभिन्न स्थानीय सब्जियों की खेती की जाती रही है (Kala, 2010, pp. 373–380)। इन फसलों का चयन स्थानीय जलवायु, ऊँचाई, मृदा एवं जल उपलब्धता के अनुसार

UNDER PEER REVIEW IN IJAR

किया जाता था। अनेक पारंपरिक फसलें स्थानीय पर्यावरण के अनुकूल होने के कारण प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपेक्षाकृत अच्छी तरह उत्पादन देने में सक्षम थीं। इसलिए ये फसलें केवल खाद्य सुरक्षा का साधन नहीं थीं, बल्कि स्थानीय कृषि-जैव विविधता और सांस्कृतिक विरासत का भी महत्वपूर्ण हिस्सा थीं। विगत कुछ दशकों में हिमालयी कृषि में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले हैं। आर्थिक विकास, बाजार व्यवस्था का विस्तार, सड़क एवं परिवहन सुविधाओं में वृद्धि, तकनीकी विकास, पर्यटन, सरकारी योजनाओं, ग्रामीण-नगरीय संपर्क तथा लोगों के बदलते जीवन-स्तर ने कृषि की प्रकृति को प्रभावित किया है। पारंपरिक निर्वाह कृषि के स्थान पर अनेक क्षेत्रों में बाजारोन्मुख एवं व्यावसायिक कृषि का विस्तार हुआ है। फलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, मसाले, औषधीय एवं सुगंधित पौधों तथा अन्य उच्च मूल्य वाली फसलों की ओर किसानों का रुझान बढ़ा है। हिमालय के अनेक भागों में बागवानी कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार बन रही है (Basannagari & Kala, 2013)। सेब, नाशपाती, आड़ू, प्लम, खुबानी, अखरोट आदि फलों की खेती ने कई क्षेत्रों में किसानों की आय के नए अवसर उत्पन्न किए हैं। इसी प्रकार सब्जी उत्पादन एवं संरक्षित खेती के माध्यम से छोटे एवं सीमांत किसान भी बाजार से जुड़ने का प्रयास कर रहे हैं। इससे कृषि के व्यावसायीकरण को बढ़ावा मिला है तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विविधता आई है। इसके विपरीत, कुछ क्षेत्रों में पारंपरिक खाद्यान्न फसलों के क्षेत्रफल एवं महत्व में कमी देखी जा रही है। मंडुवा, झंगोरा, कुट्टू तथा अन्य स्थानीय अनाजों की खेती पर बाजार आधारित फसलों का प्रभाव पड़ा है। इसके परिणामस्वरूप स्थानीय कृषि-जैव विविधता तथा पारंपरिक कृषि ज्ञान के संरक्षण से संबंधित प्रश्न भी उत्पन्न हुए हैं। स्थानीय फसलों में कमी का प्रभाव खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन के प्रति कृषि की अनुकूलन क्षमता पर भी पड़ सकता है, क्योंकि अनेक पारंपरिक फसलें स्थानीय पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल विकसित हुई हैं। हिमालयी कृषि में परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण **ग्रामीण पलायन** भी है। रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा बेहतर जीवन-स्तर की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से युवा एवं कार्यशील जनसंख्या का मैदानी नगरों तथा अन्य क्षेत्रों की ओर पलायन हुआ है। इसके परिणामस्वरूप अनेक पर्वतीय गाँवों में कृषि श्रम की उपलब्धता कम हुई है (Joshi, 2018, pp. 1–14)। छोटे एवं खंडित खेतों में पर्याप्त श्रम उपलब्ध न होने के कारण कुछ क्षेत्रों में कृषि भूमि परती छोड़ी जा रही है। कृषि भूमि का परित्याग हिमालयी ग्रामीण परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक एवं भौगोलिक परिवर्तन के रूप में उभर रहा है (Kala, 2010, pp. 373–380; नेगी, 2025, पृ. 26–30; पूजा एवं उछोली, 2025, पृ. 12–19)। **जलवायु परिवर्तन** भी हिमालयी कृषि के बदलते स्वरूप का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। तापमान में वृद्धि, वर्षा की अनियमितता, वर्षण की तीव्रता में परिवर्तन, हिमपात के स्वरूप में बदलाव, सूखा, अतिवृष्टि, भूस्खलन तथा कीट एवं रोगों में परिवर्तन कृषि उत्पादन को प्रभावित कर सकते हैं। ऊँचाई आधारित कृषि प्रणालियाँ जलवायु परिवर्तन के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील हैं (Basannagari & Kala, 2013; Vedwan & Rhoades, 2001, pp. 109–117)। तापमान एवं वर्षा में परिवर्तन के कारण फसल बोने एवं काटने के समय में परिवर्तन तथा कुछ फसलों के लिए उपयुक्त ऊँचाई क्षेत्रों में बदलाव जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। **जल संसाधनों में परिवर्तन** भी हिमालयी कृषि के लिए गंभीर चुनौती है। पर्वतीय क्षेत्रों की कृषि का एक बड़ा हिस्सा वर्षा, प्राकृतिक जलस्रोतों, झरनों और छोटी सिंचाई प्रणालियों पर निर्भर करता है। अनेक पर्वतीय क्षेत्रों में जलस्रोतों के मौसमी स्वरूप तथा जल उपलब्धता में परिवर्तन ने कृषि गतिविधियों को प्रभावित किया है (Panwar, 2020, pp. 117–132; Pant et al., 2024)। ऐसी परिस्थितियों में वर्षाजल संचयन, सूक्ष्म सिंचाई, जल संरक्षण, जलागम विकास तथा प्राकृतिक जलस्रोतों के संरक्षण का महत्व बढ़ गया है। **सड़क एवं परिवहन सुविधाओं के विस्तार** ने हिमालयी कृषि में नए अवसर उत्पन्न किए हैं। पहले दुर्गम क्षेत्रों में

UNDER PEER REVIEW IN IJAR

उत्पादित कृषि वस्तुओं को बाजार तक पहुँचाना कठिन था, लेकिन सड़क संपर्क के विस्तार से फल, सब्जियाँ, दुग्ध उत्पाद और अन्य कृषि उत्पाद बड़े बाजारों तक पहुँचने लगे हैं। इसी प्रकार उन्नत बीज, रासायनिक एवं जैविक उर्वरक, कीटनाशक, कृषि मशीनरी, पॉलीहाउस, सिंचाई तकनीक तथा डिजिटल कृषि सूचना सेवाओं के उपयोग से उत्पादन प्रणालियों में परिवर्तन आया है। हालांकि बाहरी कृषि आगतों पर अत्यधिक निर्भरता उत्पादन लागत तथा पर्यावरणीय समस्याओं को भी बढ़ा सकती है। हिमालयी क्षेत्रों में **पर्यटन का विस्तार** भी कृषि परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक है। तीर्थाटन, साहसिक पर्यटन, प्रकृति पर्यटन तथा मनोरंजन पर्यटन के विकास से स्थानीय स्तर पर फल, सब्जी, दूध, स्थानीय खाद्य पदार्थ और अन्य कृषि उत्पादों की मांग बढ़ी है। इससे किसानों के लिए नए बाजार और आय के अवसर पैदा हुए हैं। दूसरी ओर, पर्यटन केंद्रों के आसपास भूमि उपयोग में परिवर्तन, कृषि भूमि का गैर-कृषि उपयोग तथा जल संसाधनों पर बढ़ता दबाव कृषि के लिए नई चुनौतियाँ उत्पन्न कर सकता है (Pant et al., 2024; Tiwari et al., 2018, pp. 15–27)।

इस प्रकार हिमालयी कृषि में परिवर्तन एक बहुआयामी प्रक्रिया है। इसमें **भौतिक पर्यावरण, जलवायु, जनसंख्या, पलायन, बाजार, तकनीकी विकास, सरकारी नीतियाँ, परिवहन, पर्यटन तथा बदलती सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं** की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह परिवर्तन पूरे हिमालय में समान रूप से नहीं हुआ है। विभिन्न क्षेत्रों में ऊँचाई, ढाल, जलवायु, बाजार तक पहुँच, भूमि स्वामित्व, सिंचाई, परिवहन तथा स्थानीय सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर कृषि परिवर्तन की प्रकृति अलग-अलग दिखाई देती है। भौगोलिक दृष्टिकोण से हिमालयी कृषि में परिवर्तन का अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह केवल फसल उत्पादन में परिवर्तन का विषय नहीं है, बल्कि **मानव-पर्यावरण संबंधों में हो रहे व्यापक परिवर्तन** को भी प्रदर्शित करता है। कृषि भूमि के उपयोग, फसल प्रतिरूप, कृषि तकनीक, ग्रामीण रोजगार, पलायन, खाद्य सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरणीय स्थिरता के बीच गहरा संबंध है। अतः हिमालयी क्षेत्र में कृषि के बदलते स्वरूप का अध्ययन वर्तमान समय की एक महत्वपूर्ण भौगोलिक आवश्यकता है। सतत कृषि के लिए पारंपरिक कृषि ज्ञान और आधुनिक तकनीक के बीच उचित समन्वय, स्थानीय फसल विविधता का संरक्षण, जल संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, जलवायु-अनुकूल कृषि, बेहतर बाजार व्यवस्था, कृषि प्रसंस्करण तथा ग्रामीण आजीविका के विविधीकरण पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इस संदर्भ में हिमालयी कृषि का अध्ययन क्षेत्रीय विकास, खाद्य एवं आजीविका सुरक्षा तथा पर्यावरणीय संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

शोध समीक्षा

भारतीय हिमालयी क्षेत्र की मध्य-पहाड़ी कृषि प्रणाली ऐतिहासिक रूप से समृद्ध जैव-सांस्कृतिक ज्ञान, सीढ़ीदार खेतों, पारंपरिक जल संरक्षण प्रणालियों (गूल) और वन-पशुधन-फसल अंतर्संबंधों पर आधारित रही है (Maikhuri et al., 2001; Tiwari & Joshi, 2012)। पारंपरिक रूप से ये खेत वर्ष के 6 से 8 महीनों के लिए स्थानीय परिवारों को खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान करते थे। किंतु विगत तीन दशकों में इस पर्वतीय कृषि तंत्र में गहरा संकट उत्पन्न हुआ है। कृषि योग्य उपजाऊ सीढ़ीदार खेत बंजर छोड़े जा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप इन खेतों में ***लैंटाना कैमारा*** **और** ***काला बांसा/यूपेटोरियम*** जैसी आक्रामक और ज्वलनशील झाड़ियाँ पनप रही हैं। इस कृषि संकुचन के केंद्र में अनियंत्रित ग्रामीण पलायन और बस्तियों का वीरान होना है। अर्थशास्त्र के पारंपरिक सिद्धांतों के अनुसार ग्रामीण श्रम का शहरों की ओर स्थानांतरण आर्थिक आधुनिकीकरण का स्वाभाविक अंग माना जाता है (Lewis, 1954)। परंतु पर्वतीय क्षेत्रों में यह पलायन संतुलित आर्थिक विकास के बजाय जनसांख्यिकीय और पारिस्थितिकीय शून्य पैदा कर रहा है। उत्तराखंड में सैकड़ों गाँव पूरी

UNDER PEER REVIEW IN IJAR

तरह खाली हो चुके हैं, जिन्हें प्रशासनिक और आम बोलचाल में "घोस्ट विलेज" कहा जाता है (Mamgain & Reddy, 2017)। पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि परित्याग के प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं:

1. **सीढ़ीदार खेतों का अत्यधिक बिखराव व सूक्ष्म आकार:** खड़ी ढलानों पर बिखरी हुई छोटी जोतें यंत्रीकरण को असंभव बनाती हैं और प्रति इकाई उत्पादन श्रम लागत को अत्यधिक बढ़ा देती हैं।
2. **तीव्र मानव-वन्यजीव संघर्ष (HWC):** बंजर खेतों में वनों के विस्तार से जंगलों और बस्तियों के बीच का सुरक्षात्मक दायरा (buffer zone) समाप्त हो गया है, जिससे फसलों को व्यापक नुकसान पहुँच रहा है।
3. **पारंपरिक खेती की आर्थिक अनुत्पादकता:** उच्च ढुलाई लागत, प्राथमिक प्रसंस्करण सुविधाओं का अभाव और अनाज के कम दाम किसानों को खेती छोड़ने पर विवश कर रहे हैं।

शोध के उद्देश्य

वर्तमान साहित्य में पलायन और खेती छोड़ने पर चर्चा तो है, परंतु सूक्ष्म-जलसंभर (micro-watershed) स्तर पर वन्यजीव दबाव, श्रम-ह्रास और आर्थिक घाटे के अंतर्संबंधों का समग्र विश्लेषणात्मक ढांचा सीमित है। इन कमियों को दूर करने के लिए प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं:

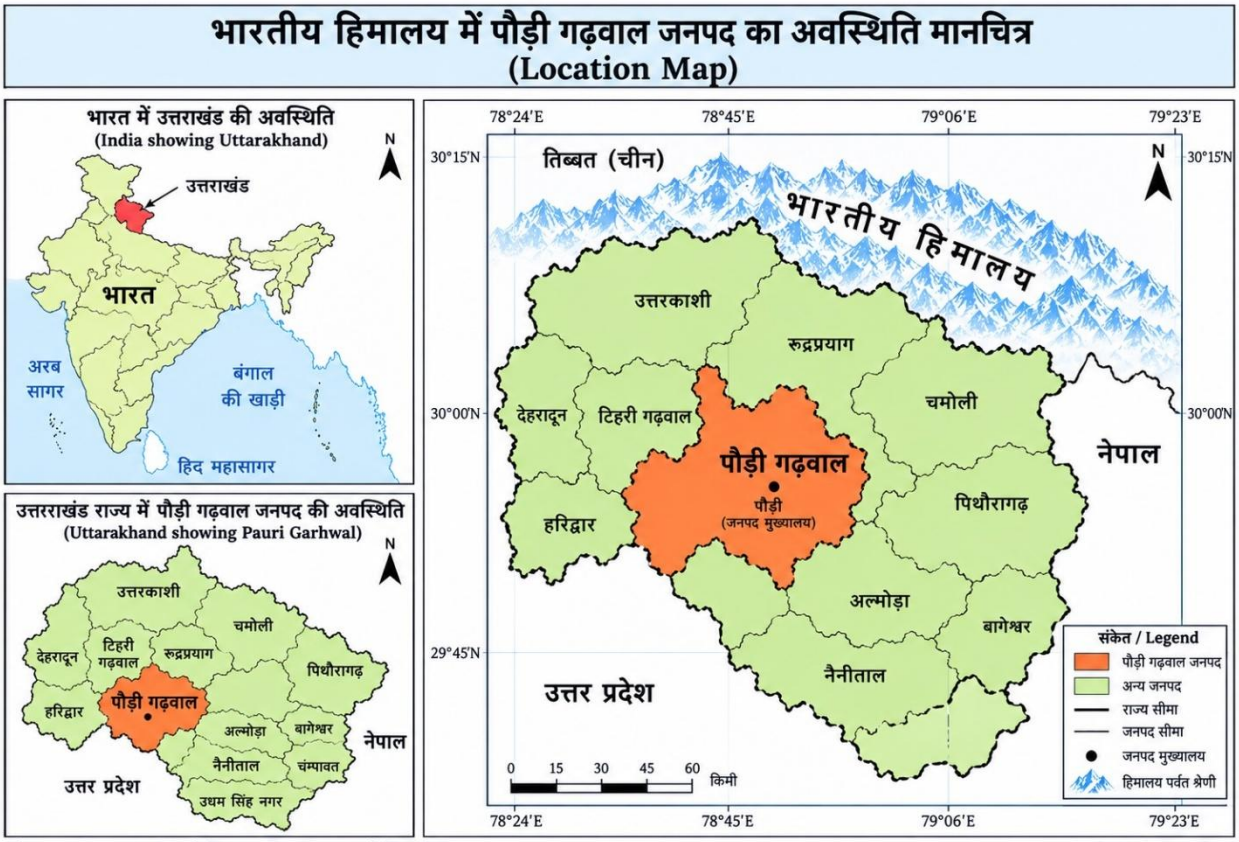
1. पलायन एवं भूमि परित्याग के स्थानिक व जनसांख्यिकीय स्वरूप का विश्लेषण करना।
2. सीढ़ीदार खेती की संरचनात्मक बाधाओं की पड़ताल करना
3. मानव-वन्यजीव संघर्ष की तीव्रता का आकलन करना।
4. व्यावसायिक पुनरुद्धार मॉडल का प्रस्ताव तैयार करना।

अध्ययन क्षेत्र एवं शोध कार्यप्रणाली

अध्ययन क्षेत्र: पौड़ी गढ़वाल जिला

पौड़ी गढ़वाल जिला लगभग 5,230 वर्ग किमी क्षेत्र में विस्तृत है। पौड़ी की भौगोलिक अवस्थिति 29°45′–30°15′ उ. अक्षांश तथा 78°24′–79°23′ पू. देशान्तर के मध्य है। समुद्र तल से इसकी ऊँचाई 300 मीटर से 3,000 मीटर तक फैली हुई है। जिले में 15 विकासखंड और 13 तहसीलें हैं। यहाँ की अधिकांश कृषि वर्षा-आधारित सीढ़ीदार खेतों पर निर्भर है। यहाँ कुल कृषित भूमि का 12 प्रतिशत सिंचित है। शेष पर वर्षा के अधीन कृषि होती है। जनपद में कुल 3483 गाँव हैं जिनमें 331 निर्जन (भुतहा) गाँव हैं। लोगों के पलायन के कारण वर्ष 2001 -2011 के मध्य जनसंख्या में -1.44 % की कमी दर्ज की गई है। जनपद के कृषि को जंगली सूअर, बंदर, सेही आदि निरंतर नुकसान पहुँचा रहे हैं।

UNDER PEER REVIEW IN IJAR



स्रोत: Survey of India; जिला पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड शासन (भौगोलिक विवरण).

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक व प्राथमिक संश्लेषणात्मक पद्धतियों का उपयोग किया गया है। साथ ही **उत्तराखंड ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग** की अंतरिम और विशिष्ट रिपोर्टों (2018, 2021) के विश्लेषण, जिला अर्थ एवं संख्या विभाग द्वारा जारी कृषि व जनसांख्यिकी आँकड़े तथा स्कोपस एवं वेब ऑफ साइंस में अनुक्रमित पर्वतीय भूमि उपयोग और सामाजिक-पारिस्थितिकीय शोध साहित्य की व्यवस्थित समीक्षा को अध्ययन का आधार बनाया गया है। **पौड़ी गढ़वाल का केस स्टडी: संकट के संरचनात्मक आयाम**

1. वीरान गाँवों की त्रासदी और जनसांख्यिकीय खोखलापन

पौड़ी गढ़वाल राज्य में पलायन का मुख्य केंद्र रहा है। वर्ष 2001 से 2011 की जनगणना अवधि में पौड़ी की दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर **-1.41%** रही। पलायन निवारण आयोग के अनुसार जिले में **331 गाँव पूर्णतः निर्जन** हो चुके हैं, जबकि 112 से अधिक ग्राम पंचायतों में जनसंख्या में 50% से अधिक की गिरावट आई है। गाँव के अधिकांश युवा पुरुष लोग आजीविका की तलाश में मैदानी क्षेत्रों (देहरादून, हरिद्वार, दिल्ली, गुरुग्राम) में प्रवास कर रहे हैं। गाँवों में केवल बुजुर्ग और महिलाएँ बची हैं, जिनके लिए पत्थरों से बनी सीढ़ीदार मेड़ों की मरम्मत, भारी जुताई और दूरस्थ खेतों तक खाद-बीज ले जाना शारीरिक रूप से अत्यधिक कठिन है (Tamang et al., 2014)। अर्थात कृषि का महिलाकरण हो रहा है और उनकी संख्या गांवों में बढ़ रही है। पुरुषों के पलायन के पश्चात **सामूहिक कृषि व्यवस्था का विघटन** हुआ है। पर्वतीय खेती में सिंचाई की गूलों की सफाई, जंगली जानवरों से सामूहिक पहरेदारी और मेड़बंदी के लिए साझे श्रम की आवश्यकता होती है। जनसंख्या के एक न्यूनतम स्तर से नीचे चले जाने पर यह सामाजिक सहयोग तंत्र टूट गया है।

2. खंडित जोतें और आर्थिक अलाभकारिता

पौड़ी गढ़वाल में प्रति परिवार औसत जोत का आकार 0.65 हेक्टेयर से भी कम है, जो विभिन्न ढलानों पर 6 से 10 अलग-अलग टुकड़ों में बिखरा हुआ है। किसानों को एक खेत से दूसरे खेत तक पहुँचने में प्रतिदिन 30 से 45 मिनट पैदल चलना पड़ता है जिससे **श्रम की बर्बादी** होती है कृषि में प्रयुक्त होने वाले **कृषि यंत्र** (ट्रैक्टर, हल्के पावर टिलर) बिना सड़क वाले दुर्गम संकरे और सीढ़ीदार खेतों में नहीं चल सकते तथा मार्ग के अभाव में पहुँच भी नहीं पाते। पारंपरिक मोटे अनाजों को सड़क मार्ग तक पहुँचाने में लगने वाली **ढुलाई लागत** ही उत्पाद के कुल मूल्य का 25% से 40% तक सोख लेती है।फलतः कृषि में लाभ कम होता है।

3. मानव-वन्यजीव संघर्ष का दुष्चक्र

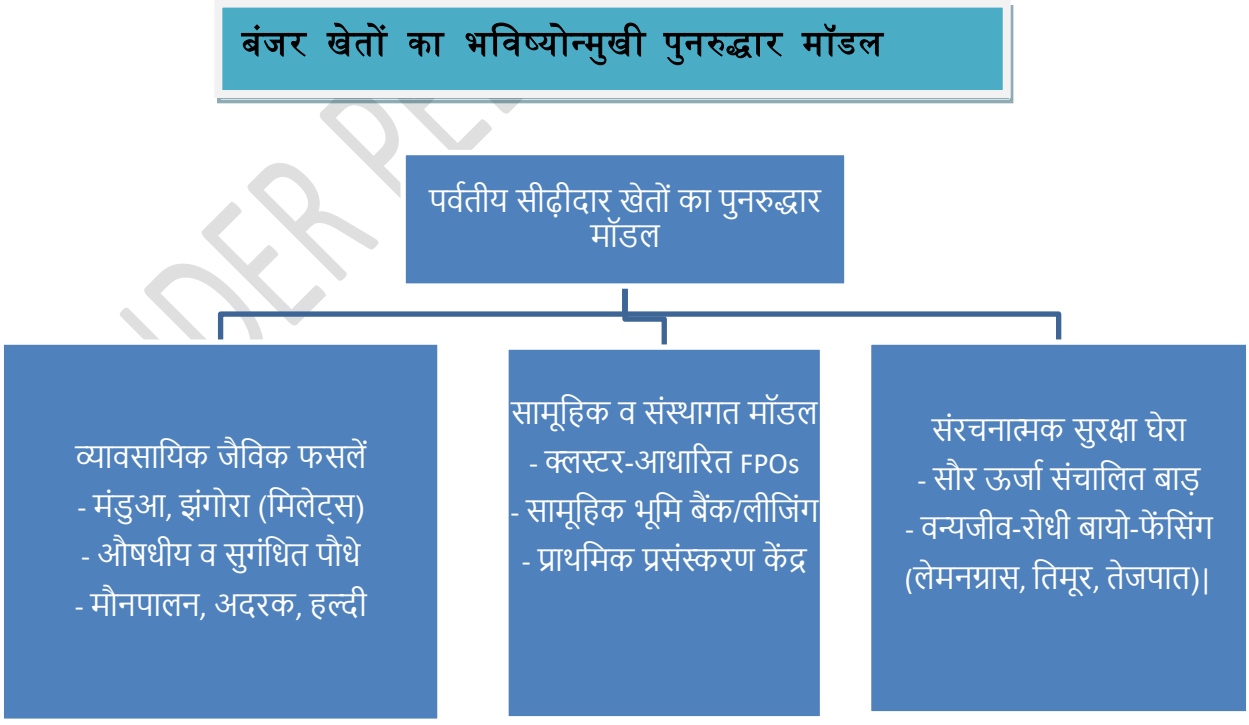
पौड़ी में मानव-वन्यजीव संघर्ष एक स्व-चालित दुष्चक्र का रूप ले चुका है जो निम्नलिखित माडल से स्पष्ट है –

युवाओं का पलायन ⟶ खेतों का बंजर होना ⟶ झाड़ियों व जंगलों का विस्तार ⟶ वन्यजीवों के हमले में वृद्धि ⟶ खेती का पूर्ण परित्याग

एकेश्वर, कोट, पाबो और थलीसैंण जैसे विकासखंडों में बंदरों और जंगली सूअरों के झुंड फसलों को 40% से 70% तक नष्ट कर देते हैं (Saraswat et al., 2015)। इसके डर से किसानों ने गहत, भट्ट और पारंपरिक धान-गेहूँ उगाना पूरी तरह बंद कर दिया है।

4.रणनीतिक समाधान: पौड़ी के बंजर खेतों का भविष्योन्मुखी पुनरुद्धार

पलायन आयोग के निष्कर्षों और स्थानीय वस्तुस्थिति से स्पष्ट है कि पर्वतीय खेती को पुराने निर्वाह ढांचे पर वापस नहीं लौटाया जा सकता। इसका एकमात्र व्यावहारिक समाधान **आधुनिक, संगठित और उच्च-मूल्य व्यावसायिक कृषि** में निहित है।



UNDER PEER REVIEW IN IJAR

4.1. स्थानीय मोटे अनाजों (मिलेट्स) का मूल्य संवर्धन और ब्रांडिंग

पौड़ी गढ़वाल के पास जलवायु-सहिष्णु और पौष्टिक फसलों का स्वाभाविक लाभ है:

- **मंडुआ (Finger Millet) और झंगोरा (Barnyard Millet):** ये फसलें कम पानी और पथरीली मिट्टी में भी बेहतर उपज देती हैं। वर्तमान में स्वास्थ्य के प्रति जागरूक शहरी बाजारों में ग्लूटन-फ्री मोटे अनाजों की भारी माँग है।
- **पारंपरिक दालें:** गहत (कुल्थी), भट्ट (काला सोयाबीन) और स्थानीय राजमा को प्रीमियम उत्पाद के रूप में बेचा जा सकता है।
- **प्रसंस्करण इकाइयाँ:** सतपुली, कोटद्वार और श्रीनगर जैसे केंद्रों पर प्राथमिक सफाई, ग्रेडिंग, छिलका उतारने और वैक्यूम पैकेजिंग की इकाइयाँ स्थापित करके किसान सीधे मूल्य संवर्धन का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

4.2. सामूहिक क्लस्टर खेती: मरोड़ा ग्राम पंचायत (पाबो) का सफल मॉडल

भूमि विखंडन से निपटने के लिए पौड़ी जिले के **पाबो ब्लॉक के मरोड़ा गाँव** का मॉडल एक व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत करता है:

- मरोड़ा में ग्रामीणों ने बिखरे हुए बंजर खेतों को आपसी सहमति से एक बड़े चक (cluster) में बदला और सामूहिक बागवानी (अनार व सिट्रस फल) शुरू की।
- वर्षा जल संचयन के लिए पॉलीथिन-युक्त (LDPE) टैंक, ड्रिप सिंचाई और मल्चिंग जैसी तकनीकि का उपयोग किया, जिससे खरपतवार और पानी की समस्या दूर हुई।
- पूरे क्लस्टर को सामूहिक सौर बाड़बंदी (Solar Fencing) से सुरक्षित किया गया, जिससे प्रति किसान लागत न्यूनतम हो गई।
- इस मॉडल को पहाड़ के उन बंजर गाँवों में भी लागू किया जा सकता है जहाँ मूल भू-स्वामी बाहर रहते हैं, बिना उनकी ज़मीन का मालिकाना हक छीने खेती हो सके।

4.3. वन्यजीव-रोधी बायो-फेंसिंग और नकदी फसलें

जंगली जानवरों के संकट को कम करने के लिए वन सीमाओं से लगे खेतों में ऐसी फसलें उगाई जानी चाहिए जिन्हें जंगली जानवर नहीं खाते:

- **सुगंधित एवं औषधीय फसलें:** लेमनग्रास, कैमोमाइल, रोज़मेरी, तिमूर (*Zanthoxylum armatum*), अदरक और हल्दी। इनकी तीखी गंध और स्वाद के कारण बंदर और सूअर इन्हें नुकसान नहीं पहुँचाते।
- **मौनपालन (Apiculture):** यह न केवल उच्च-मूल्य जैविक शहद प्रदान करता है, बल्कि घाटी की फसलों में परागण की दर बढ़ाकर समग्र उत्पादकता में वृद्धि करता है।

4.4. संस्थागत एवं नीतिगत सुधार

- **भूमि लीजिंग नीति का प्रभावी क्रियान्वयन:** राज्य सरकार के लीज कानून के तहत वीरान गाँवों की बंजर ज़मीन को स्थानीय युवाओं या स्वयं सहायता समूहों को 15-20 वर्ष के पट्टे पर देने की सुगम व्यवस्था की जाए, जिससे मूल मालिक का मालिकाना हक सुरक्षित रहे।
- **क्लस्टर-आधारित FPOs का गठन:** 200 से 500 छोटे किसानों को मिलाकर FPO बनाए जाएँ, जिससे बीज-खाद की थोक खरीद, साझा पावर टिलर का संचालन और सीधे खुदरा कंपनियों से अनुबंध संभव हो सके।
- **सक्रिय वन्यजीव नीति:** क्षति होने के बाद मामूली मुआवजा देने के बजाय, कृषि क्लस्टरों को घेरने के लिए 80% सरकारी सब्सिडी पर मजबूत सौर ऊर्जा बाड़बंदी उपलब्ध कराई जाए।

UNDER PEER REVIEW IN IJAR

5. निष्कर्ष (Conclusion)

पौड़ी गढ़वाल का संकट पूरे मध्य हिमालयी क्षेत्र की कृषि और जनसांख्यिकी स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। बंजर पड़ते खेत और वीरान गाँव मात्र पलायन का परिणाम नहीं हैं, बल्कि यह पारंपरिक कृषि की आर्थिक अलाभकारिता, श्रम संकट और अनियंत्रित वन्यजीव हमलों की मिली-जुली परिणति है। पहाड़ की खेती को बचाने का रास्ता अतीत की निर्वाह खेती में लौटने के बजाय **भविष्योन्मुखी व्यावसायीकरण** में है। स्थानीय मिलेट्स (मंडुआ, झंगोरा), उच्च-मूल्य दालों, सुगंधित फसलों और सामूहिक बागवानी को जब क्लस्टर आधारित FPO, प्राथमिक प्रसंस्करण और सौर बाड़बंदी का संरक्षण मिलेगा, तभी बंजर खेत पुनः आजीविका के केंद्र बन सकेंगे। पौड़ी जिले का यह मॉडल संपूर्ण हिमालयी क्षेत्र में सतत पर्वतीय कृषि के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शक बन सकता है।

संदर्भ सूची (References)

- Birthal, P. S., Joshi, P. K., Roy, D., & Thorat, A. (2015). Diversification in Indian agriculture towards high-value crops: The role of smallholders and firms. *Agribusiness*, 31(2), 237–251. https://doi.org/10.1002/agr.21398
- Basannagari, B., & Kala, C. P. (2013). Climate change and apple farming in Indian Himalayas: A study of local perceptions and responses. *PLOS ONE, 8*(10), Article e77976. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0077976
- Chand, R. (1996). Diversification through high value crops in western Himalayan region: Evidence from Himachal Pradesh. *Indian Journal of Agricultural Economics*, 51(4), 652–663.
- Joshi, B. (2018). Recent trends of rural out-migration and its socio-economic and environmental impacts in Uttarakhand Himalaya. *Journal of Urban and Regional Studies on Contemporary India, 4*(2), 1–14. https://doi.org/10.15027/45581
- Kala, C. P. (2010). Status of an indigenous agro-forestry system in changing climate: A case study of the middle Himalayan region of Tehri Garhwal, India. *Journal of Forest Science, 56*(8), 373–380. https://doi.org/10.17221/113/2009-JFS
- Lewis, W. A. (1954). Economic development with unlimited supplies of labour. *The Manchester School*, 22(2), 139–191. https://doi.org/10.1111/j.1467-9957.1954.tb00021.x
- Maikhuri, R. K., Rao, K. S., & Semwal, R. L. (2001). Changing scenario of Himalayan agroecosystems: Loss of agrobiodiversity, an indicator of environmental degradation in Central Himalaya, India. *The Environmentalist*, 21(1), 23–39. https://doi.org/10.1023/A:1010632514173
- Mamgain, R. P., & Reddy, D. N. (2017). Outmigration from the hill region of Uttarakhand: Magnitude, challenges and policy issues. *Journal of Rural Development*, 36(3), 373–402. https://doi.org/10.25175/jrd/2017/v36/i3/120612
- Panwar, S. (2020). Vulnerability of Himalayan springs to climate change and anthropogenic impact: A review. *Journal of Mountain Science, 17*, 117–132. https://doi.org/10.1007/s11629-018-5308-4
- Pant, N., Hagare, D., Maheshwari, B., Rai, S. P., Sharma, M., Dollin, J., Bhamoriya, V., Puthiyottil, N., & Prasad, J. (2024). Rejuvenation of the springs in the Hindu Kush

UNDER PEER REVIEW IN IJAR

Himalayas through transdisciplinary approaches—A review. *Water, 16*(24), Article 3675. https://doi.org/10.3390/w16243675

- Rao, K. S., Maikhuri, R. K., Nautiyal, S., & Saxena, K. G. (2002). Crop damage and livestock depredation by wildlife: A case study from Nanda Devi Biosphere Reserve, India. *Journal of Environmental Management*, 66(3), 317–327. https://doi.org/10.1006/jema.2002.0587
- Rural Development and Migration Prevention Commission [RDMPC]. (2018). *Interim report on socio-economic conditions and out-migration from rural areas of Uttarakhand*. Government of Uttarakhand, Pauri.
- Rural Development and Migration Prevention Commission [RDMPC]. (2021). *Assessment of socio-economic development and reverse migration dynamics during COVID-19 in Pauri Garhwal*. Government of Uttarakhand, Pauri.
- Saraswat, R., Sinha, A., & Radhakrishna, S. (2015). A god becomes a pest: Human–rhesus macaque interactions in Himachal Pradesh, northern India. *European Journal of Wildlife Research*, 61(3), 435–443. https://doi.org/10.1007/s10344-015-0914-7
- Stark, O., & Bloom, D. E. (1985). The new economics of labor migration. *American Economic Review*, 75(2), 173–178.
- Tamang, S., Paudel, K. P., & Shrestha, K. K. (2014). Feminization of agriculture and its implications for food security in rural Nepal. *Journal of Forest and Livelihood*, 12(1), 20–32.
- Tiwari, P. C., & Joshi, B. (2012). Natural and socio-economic factors in agricultural land abandonment in the Uttarakhand Himalaya, India. *Journal of Mountain Science*, 9(3), 404–414. https://doi.org/10.1007/s11629-012-2253-x
- Tiwari, P. C., Tiwari, A., & Joshi, B. (2018). Urban growth in Himalaya: Understanding the process and options for sustainable development. *Journal of Urban and Regional Studies on Contemporary India, 4*(2), 15–27.
- Vedwan, N., & Rhoades, R. E. (2001). Climate change in the western Himalayas of India: A study of local perception and response. *Climate Research, 19*(2), 109–117. https://doi.org/10.3354/cr019109
- नेगी, वि. (2025). उत्तराखण्ड पर्वतीय क्षेत्रों में विकास एवं पलायन का एक अध्ययन. *International Journal of Trends in Emerging Research and Development, 3*(4), 26–30. https://doi.org/10.5281/zenodo.15879824
- पूजा, एवं उछोली, अ. (2025). उत्तराखंड में बदलती पलायन प्रवृत्तियाँ और रोजगार स्वरूपों में परिवर्तन: ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग की रिपोर्टों पर केंद्रित एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. *International Journal of Science and Consciousness, 11*(3), 12–19. https://doi.org/10.5281/zenodo.19434911

UNDER PEER REVIEW IN IJAR